

तिरंगे पर कब्जे की लड़ाई

प्रेम सिंह

(2011 का यह लेख 'युवा संवाद' और हस्तक्षेप डॉट कॉम में छपा था। तब से लेकर अब तक सत्ता के गलियारों में देश के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे का कारोबार कई गुना बढ़ चुका है। ध्यान कर सकते हैं कि इंडिया अगेन्स्ट करप्शन के तत्वावधान में आयोजित भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन, और उसकी कोख से निकली कारपोरेट राजनीति की नई बानगी आम आदमी पार्टी तिरंगे पर सवार होकर आई थी। यह भी ध्यान कर सकते हैं कि भारत के प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष खेमे ने तिरंगे पर सवार होकर आने वाली उस विचारधारा-विहीन राजनीति को 'भ्रष्ट कांग्रेस' के स्थान पर स्थापित करने में 'अभी नहीं तो कभी नहीं' का उद्घोष करते हुए पूरी ताकत लगा दी थी।

तिरंगे के तेज होते कारोबार के युग में यह पार्टी और उसका सुप्रीमो बाजारों से लेकर स्कूली बच्चों की हैप्पीनेस कक्षाओं तक का प्रचार तिरंगा लहराते हुए करता है। जनता की गाढ़ी कमाई के अरबों रुपये खर्च करके लगाए जाने वाले नित नए होर्डिंग देखने की दिल्लीवासियों को आदत पड़ चुकी है।

खास कर पिछले दो दशकों में कारपोरेट राजनीति ने तिरंगे को बहुत ऊंचा चढ़ा दिया है। पिछले साल खबर आई थी कि प्रवासी भारतीयों की फेडरेशन ने न्यूयार्क शहर के मशहूर टाइम्स स्क्वेयर पर 75वें स्वतंत्रता दिवस पर विशालतम तिरंगा फहराया। तब हमें गुमान नहीं हुआ था कि आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर केंद्र (दिल्ली राज्य समेत) की सत्ता में बैठे भाई लोग तिरंगे का कारोबार आसमान तक पहुंचा देंगे!

तिरंगा ध्वज की ताकत की पड़ताल करने वाला यह एक दशक पुराना लेख नए पाठकों के लिए संक्षिप्त 'पुनश्च' के साथ फिर से साझा किया जा रहा है। साथ में पहली बार लेख का अंग्रेजी वर्जन भी प्रकाशित किया जा रहा है।)

शासक-वर्ग की ताकत का तिरंगा

26 जनवरी (2011) को 62वें गणतंत्र दिवस का जश्न पूरा हुआ। देश और प्रांतों की राजधानियों के 'राजपथ' पर और ऊपर आकाश में तिरंगा लहराया गया और उसका गुणगान हुआ। शासकीय प्रतिष्ठान के छोटे ठिकानों पर भी धूम-धाम से जश्न मनाया गया। स्वाधीनता दिवस और गणतंत्र दिवस पर शासक-वर्ग का तिरंगा-प्रेम देखते बनता है। तिरंगे के साथ वह जैसे खुद लहराने लगता है। तिरंगा अब भारत के शासक-वर्ग की ताकत का प्रतीक है। दोनों एक-दूसरे में घुल-मिल गए हैं। तिरंगे में निहित जनता की ताकत शासक-वर्ग ने पूरी तरह सोख ली है।

जो तिरंगा हमारे चारों तरफ लहराता नजर आता है, वह भारत के शासक-वर्ग का राष्ट्रीय ध्वज है। जिसका तिरंगे पर कब्जा होगा, उसका देश पर भी कब्जा होगा। इसीलिए शासक-वर्ग में ऊंचा से ऊंचा और सुंदर से सुंदर तिरंगा लहराने की होड़ लगी रहती है।

हम पहले बता चुके हैं कि मुनाफे की मुहिम पर निकली दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियां, जिन्होंने मादरे हिंद और उसकी गरीब संतानों को आक्रांत करके रख दिया है, भी तिरंगे को प्यार करती हैं। स्वाधीनता और गणतंत्र दिवसों पर कंपनियों का तिरंगे के लिए प्यार शासक-वर्ग की तरह छलकता है। हमारे बच्चे तिरंगे की महिमा वहीं से सीखते हैं। हम तफसील से बता चुके हैं कि देश के संसाधनों को इन कंपनियों और कारपोरेट घरानों को बेचने का काम शासक-वर्ग तिरंगे को साक्षी रख कर करता है। जिस दिन मनमोहन सिंह और सोनिया गांधी की सरकार ने अमेरिका के साथ परमाणु समझौता करके देश के अस्मिता, संप्रभुता और सुरक्षा तंत्र में स्थायी कील ठोंकी थी, संसद पर तिरंगा बड़ी शान से लहरा रहा था। तब हमने बताया था कि परमाणु समझौते का विरोध करने वाली भाजपा और उसकी सहयोगी पार्टियां सरकार में होतीं, तो वही करतीं जो कांग्रेस और उसकी सहयोगी पार्टियों ने किया। बहुराष्ट्रीय कंपनियां अब भारत के शासक-वर्ग की स्थायी सदस्य हैं। इस मायने में भारत का वाकई वैश्वीकरण हुआ है।

आजादी के संघर्ष के दौर में तिरंगा कांग्रेस का झंडा था, जिसके बीच में चरखे का निशान रखा गया था। संविधान सभा में चरखे की जगह धर्म-चक्र रखा गया तो चरखे वाला तिरंगा कांग्रेस पार्टी ने अपने झंडे के रूप में बनाए रखा। कांग्रेस में विभाजनों से पैदा हुए विवादों के बावजूद नेहरू खानदान वाली कांग्रेस ने तिरंगा कभी नहीं छोड़ा। 1969 में कांग्रेस में विभाजन होने पर चरखे के निशान वाला झंडा और दो बैलों की जोड़ी वाला चुनाव चिन्ह चुनाव आयोग ने रोक लिए थे। इंदिरा गांधी की कांग्रेस को गाय का दूध पीता बछड़ा चुनाव चिन्ह मिला, तो उसने वह तिरंगे में चरखे की जगह रख दिया। 1978 में कांग्रेस में हुए एक और विभाजन पर इंदिरा गांधी वाली कांग्रेस को हाथ चुनाव चिन्ह मिला। उसे भी उसने पहले के तिरंगे के बीच रख दिया। इसका उसे बराबर चुनावी लाभ मिलता रहा है। वह राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे पर कब्जे की लड़ाई, जिस पर हम इस बार चर्चा करने जा रहे हैं, में भी हमेशा आगे रहती है। तिरंगे में शासक-वर्ग की सत्ता की ताकत बसती है, तो जाहिर है, उस पर कब्जे की लड़ाई भी है। उस लड़ाई के कई रूप सामने आते रहते हैं।

काफी पहले से यह कहने का प्रचलन है कि देखें अगली बार लाल किले पर तिरंगा कौन फहराएगा? अथवा, किसने कितनी बार लाल किले पर तिरंगा फहराया? इस तरह भी कहा जाता है कि फलां देखते हैं लाल किले पर तिरंगा फहरा पाएगा या नहीं? अर्थात् देश के शासक-वर्ग की सबसे ताकतवर हस्ती और जमात कौन-सी होगी? भारत में राजनीति करने वाला हर वह

शख्स जो प्रधानमंत्री बनने का मंसूबा पालता है, अपने को लाल किले पर तिरंगा फहराते जरूर कल्पित करता होगा!

चौधरी चरण सिंह के समय जब डोर खींचने में कुछ विलंब हुआ, तो संदेश यही गया कि वे तिरंगा फहराने के सही दावेदार नहीं हैं! उनका तिरंगे से तादात्म्य नहीं हो पाया है; वह तिरंगा, जो शासक-वर्ग की ताकत और शान का प्रतीक है। आप देख सकते हैं भारत के बुद्धिजीवी कभी अपने राजनैतिक विश्लेषण में चरण सिंह का नाम नहीं लेते। हमने कभी उन पर दो-तीन लेख लिखे, तो एक मार्क्सवादी मित्र ने कहा कि यह तुम्हें क्या हो गया है? यानि राजनैतिक लेखन उन्हीं पर केंद्रित होना चाहिए, जो सही मायने में शासक-वर्ग में आते हैं!

सत्ता की दावेदार देश की दूसरी बड़ी राजनैतिक पार्टी भाजपा ने इस बार कुछ अलग अंदाज में तिरंगा फहराने की ठानी। सत्ता के बारे में बताते हैं कि वह खून की तरह मुंह लग जाती है। पिछले आम चुनाव में एक बार फिर पराजय ने भाजपा को अंदर तक बेचैन कर दिया है। अपने प्रिय भगवा ध्वज को एक तरफ फेंक कर 'या तिरंगा तेरा ही आसरा' कहते हुए उसने घोषणा की कि गणतंत्र दिवस पर वह श्रीनगर के लाल चौक पर जाकर तिरंगा फहराएगी। लाल चौक पर तिरंगा फहराकर वह अलगाववादियों को राष्ट्रवादी जवाब देगी। उसके हिसाब से कश्मीर अलगाववादियों के हाथ में चला गया है। उसके मुताबिक वहां जो तिरंगा फहराता है, अथवा इस गणतंत्र दिवस पर फहराया जाएगा, उसमें राष्ट्र-भक्ति की ताकत नहीं है।

भाजपा मतदाताओं को संदेश देना चाहती थी कि जिस कांग्रेस सरकार को उसने चुना है, उसमें, यानी उसके राष्ट्रवाद में, अलगाववाद और आतंकवाद से निपटने की ताकत नहीं है। वह तिरंगे की ताकत का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह ताकत भाजपा के राष्ट्रवाद में है, जो जोखिम उठा कर लाल चौक पर तिरंगा फहराने का हौसला रखती है। भाजपा ने माना कि देश की जनता तक उसके देशभक्ति और बहादुरी से भरे कदम का संदेश पहुंचेगा, और वह अगली बार उसे लाल किले पर एक बार फिर तिरंगा फहराने का मौका देगी। अगले आम चुनाव में उसका एक नारा हो सकता है - 'कश्मीर बचाना है, भाजपा को लाना है'।

भाजपा जानती है कश्मीर को लेकर पाकिस्तान में ही नहीं, भारत में भावनाओं का ज्वार उमड़ता है। तभी कांग्रेस के नेताओं ने भाजपा को कहा कि वह कश्मीर जैसे संवेदनशील मुद्दे पर राजनीति न करे। यानी उसे पूरा डर है कि भाजपा का कश्मीर में तिरंगा फहराने का अभियान उसे राजनीतिक लाभ दे सकता है। 12 जनवरी 2011 को एकता यात्रा के नाम से कलकत्ता से लहराते तिरंगों का एक रथ सजाया गया, जिसे श्रीनगर के लाल चौक तक जाना था। आयोजन हालांकि भारतीय जनता युवा मोर्चा का था, लेकिन पार्टी के कई बड़े नेता उसमें शामिल हुए। कश्मीर के नाजुक हालातों के मददेनजर कार्यक्रम रोक देने की केंद्र व जम्मू-कश्मीर सरकारों की अपील पर ध्यान न देकर उन्होंने कार्यक्रम की जोरदार वकालत की।

एकता यात्रा के दौरान तिरंगा लहराते हुए भाजपा ने कई जगह कार्यक्रम आयोजित किए और बयान दिए। कहा कि वे राष्ट्रवादी हैं, जो अलगाववादियों से मुकाबला करने कश्मीर जा रहे हैं; कश्मीर में कांग्रेस ने अलगाववादियों के सामने घुटने टेक दिए हैं; केंद्र और जम्मू-कश्मीर की सरकारें तिरंगा फहराने के संविधान-सम्मत नागरिक अधिकार को छीन कर आपातकाल जैसा बर्ताव कर रही हैं; अहिंसक आंदोलन को सुरक्षा बलों द्वारा कुचला जा रहा है; तिरंगा लेकर चलना और फहराना इस देश में क्या गुनाह हो गया है?

‘जनसत्ता’ के एक प्रचारक पत्रकार, जो हिंदू और मुसलमान के खांचों को छोड़ कर कभी नागरिक या मनुष्य के रूप में नहीं सोच पाते, ने लिखा कि जब जम्मू-कश्मीर पुलिस में भरती इतने मुसलमान रोज तिरंगा लेकर चलते हैं, तो भाजपा को तिरंगा फहराने से क्यों रोका जा रहा है? जनता दल (यूनाइटेड) भाजपा की सहयोगी पार्टी है। उसके नेताओं ने कहा कि भाजपा को कश्मीर जैसे संवेदनशील मुद्दे पर यह नहीं करना चाहिए। शासक-वर्ग के नए ‘विकास-पुरुष’ नितीश कुमार भी बोले। लेकिन भाजपा को उनकी न सुननी थी, न सुनी। संघ संप्रदाय उनकी हकीकत और हैसियत जानता है कि ये ‘पिछड़े सम्राट’ महज एक-दो पारी मुख्यमंत्री-प्रधानमंत्री बनने की राजनीति करते हैं। संघ के सामने बड़ा मिशन है - ‘हिंदू-राष्ट्र’ बनाने का। वह एक दीर्घावधि परियोजना है। उसमें न जाने कितने जॉर्ज फर्नांडीजों और मायावतियों को मंत्री-मुख्यमंत्री की पारियां देनी होंगी। ‘हिंदू-राष्ट्र’ बनाना बलिदानी काम है तो बलिदान करना होगा - ‘तेरा वैभव अमर रहे मां हम दिन चार रहें न रहें’!

अपने शासनकाल में भाजपा ने मुसलमानों को रिझाने, और धमकाने के काफी प्रयास किए थे। वाजपेयी ने हरा साफा भी बांध था, और आरएसएस ने संघ में मुसलमानों को लेने की घोषणा की थी। लेकिन मुसलमान हैं कि सीधे साथ नहीं आते। पिछड़े और दलित नेताओं का यह फायदा है कि वे उनके साथ आ जाते हैं। इस तरह भाजपा से बिदके मुसलमान भी ‘हिंदू-राष्ट्र’ बनाने के काम में आ जाते हैं। भाजपा दलितों और पिछड़ों को भी अपने काम में आया मानती है, जब मायावती और नितीश कुमार को मुख्यमंत्री बनवाती है। हालांकि दिल की तसल्ली के लिए ऐसे नेता कहते रहते हैं कि वे भाजपा का इस्तेमाल कर रहे हैं, जबकि सच्चाई इसके उलट होती है - वे इस्तेमाल हो रहे होते हैं। दलित और पिछड़ा उभार की ‘प्रगतिशील’ भूमिका के ‘हिंदू-राष्ट्र’ को किए जाने वाले इस अवदान को भी गौर किया जाना चाहिए।

बहरहाल, जम्मू में कुछ भाजपा नेताओं की गिरफ्तारी हुई और उन्होंने मीडिया को संबोधित किया। उनकी गिरफ्तारी के विरोध में राजनाथ सिंह दिल्ली में राजघाट पर उपवास पर बैठे। उन्हें लगा होगा कि गांधी की समाधि पर बैठ कर अहिंसा की बात करने का कुछ न कुछ प्रभाव जरूर होगा। गांधी के साथ जितना भौंडा और पाखंडपूर्ण व्यवहार भारत का शासक-वर्ग करता है, उसकी कहीं मिसाल नहीं मिलेगी। ‘वध’ भी करेंगे और ‘प्रातःस्मरणीय’ भी बना लेते हैं! किसानों की आत्महत्याओं, नौजवानों की बेरोजगारी, बच्चों के कुपोषण और करोड़ों मेहनतकशों

को भुखमरी और बीमारी का शिकार बना कर सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह कहते हैं, वे गांधी के सपनों का भारत बनाने में जुटे हैं! यह कहानी भारत में नेताओं से लेकर बुद्धिजीवियों तक अनंत है।

काफी फेनफेयर से शुरू की गई भाजपा की एकता यात्रा ने जम्मू आते-आते दम तोड़ दिया। कार्यकर्ताओं की भीड़ नहीं उमड़ी। लाल चौक पर तिरंगा नहीं फहराया जा सका। सुरक्षा बलों के घेरे को तोड़ कर एक भी नेता या कार्यकर्ता लाल चौक नहीं पहुंचा। जम्मू इलाके के कठुआ कस्बे में, खबरों के मुताबिक 200 कार्यकर्ताओं की मौजूदगी में भाजपा नेताओं ने तिरंगा फहराने की रस्म अदायगी की। सब जानते हैं अपनी सरकार न रहे तो 'आंदोलन' में जोखिम रहता है। वे जोखिम उठाने की भावना में जीने और वास्तविकता में जोखिम उठाने का जमीन-आसमानी फर्क कई पीढ़ियों से जानते हैं।

इस संदर्भ में यहां 'मैला आंचल' (फणीश्वरनाथ रेणु) का एक प्रसंग देखा जा सकता है: "अगस्त 1942। कचहरी पर चढ़ाई। धांय-धांय। पुलिस हवाई फायर करती है। लोग भाग रहे हैं। बावनदास ललकारता है, जनता उलट कर देखती है। डेढ़ हाथ का इंसान सीना ताने खड़ा है। ... 'बंबई से आई आवाज!' ... जनता लौटती है। बावनदास पुलिस वालों के पांवों के बीच से घेरे के उस पार चला जाता है और विजयी तिरंगा शान से लहरा उठता है। ... महात्मा गांधी की जय!" (पृष्ठ 131)

तिरंगा न फहरा पाने के बावजूद कार्यक्रम को सफल बताते हुए भाजपा नेताओं ने एकता यात्रा में हिस्सा लेने वाले कार्यकर्ताओं को बहादुर बताया और उनकी बहादुरी की तारीफ के पुल बांधे। बातों की बहादुरी की हौसला अफजाई इसी तरह की जाती है! भाजपा ने इतनी कवायद और खर्चा बेकार नहीं किया था। उसे पता था जिस तरह के हालात हैं, लाल चौक पर तिरंगा नहीं फहराने दिया जाएगा। वे यह भी जानते थे कि बातों की बहादुरी रास्ते के लिए है; लाल चौक पहुंचना जान जोखिम में डालना होगा। लेकिन उसे आशा थी कि ऐसा करने से प्रचार मिलेगा, जिसका पार्टी को राजनीतिक फायदा हो सकता है। मीडिया में उसे काफी प्रचार मिला भी। राजनीतिक फायदे का बाद में पता चलेगा।

भाजपा का यह पुराना राग है कि अलगाववाद पर राष्ट्रवाद की जीत केवल वही सुनिश्चित कर सकती है। उसकी नजर में लाल चौक पर तिरंगा फहराना राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति काम है। यह कवायद वह एक बार पहले भी कर चुकी है। 1991 में उसके वरिष्ठ नेता मुरली मनोहर जोशी ने एकता यात्रा की थी और हवाई जहाज से जाकर लाल चौक पर तिरंगा फहराया था। तब से अलगाववाद और आतंकवाद कई गुना बढ़े हैं। यह समस्या केवल कश्मीर तक सीमित नहीं है। असम समेत पूरा उत्तर-पूर्व लंबे समय से अलगाववाद की चपेट में है। ऐसा नहीं है कि वहां मुसलमान अलगाववादी हों। खुद उनकी सहयोगी शिवसेना महाराष्ट्र में गरीब मेहनतकश

उत्तर भारतीयों को जब-तब पीटती रहती है। महाराष्ट्र की सीमा से लगे राज्यों के साथ अगर कोई विवाद है तो शिव सैनिक उस राज्य-विशेष के नागरिकों को महाराष्ट्र में रहने का दंड देते हैं। जिस जनता को भाजपा तिरंगे की ताकत दिखाना चाहती है, वह उससे पूछ सकती है कि अगर लाल चौक पर तिरंगा फहराने से अलगाववाद पर राष्ट्रीय एकता की जीत हो जाती है, तो वह 'जादू' पहले की यात्रा से क्यों नहीं हो गया?

शासक-वर्ग का सम्मिलित चरित्र

लोहिया ने भारत के शासक-वर्ग के बारे में बताया है कि वह शुरू से कायर और जी-हुजूरिया रहा है। इसमें जोड़ा जा सकता है कि वह नकलची भी रहा है। शासक-वर्ग के कायर, चापलूस और नकलची चरित्र की कई अभिव्यक्तियां (मेनीफेस्टेशंस) देखने को मिलती हैं। उन पर यहां विचार करने का इरादा नहीं है। यह कहा जा सकता है कि संघ संप्रदाय उन अभिव्यक्तियों में सबसे दयनीय नजर आता है। जोखिम उठाने और वीरता दिखाने का उसका खाता खाली है। वह जो सांप्रदायिक 'जौहर' दिखाता है, उसे वीरता उसके अपने शब्दकोश में ही कहा जा सकता है। संघ संप्रदाय ने आजादी के संघर्ष में हिस्सेदारी नहीं की। की होती तो उसमें जोखिम उठाने की हिम्मत आती और भारत के बहुलताधर्मि स्वरूप की समझदारी भी बनती। तब उसकी खुद की स्थिति बेहतर होती, और वह समाज की बेहतरी का काम भी कर पाता। अब जबकि सुरक्षा और सुभीता है, धरती पर रथों और आकाश में हवाई जहाजों से आना-जाना है, आलीशान होटलों में सोना-खाना है, मीडिया वाले साथ-साथ चलते हैं, पल-पल प्रचार होता है, तो वह बातों का बहादुर बनता है।

प्रधानमंत्री रहते अटल बिहारी वाजपेयी बतोला मारते थे कि भारत को कोई माई का लाल नहीं खरीद सकता। यानी उनके रहते नहीं। ये वही वाजपेयी हैं जिनके बारे में चर्चा रही है कि उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लेने वालों के खिलाफ मुखबरी की थी। उनके बचाव में कहा जाता है कि तब उनकी उम्र ही क्या थी? हालांकि खुदीराम बोस से लेकर भगत सिंह तक क्रान्तिकारियों की उम्र ज्यादा नहीं रही। यहां हम पुराना किस्सा नहीं उठाना चाहते। वैसे भी भारत छोड़ो आंदोलन में मुखबरी करने वाले वे अकेले नहीं थे। कम्युनिस्टों ने मुखबरी को मुहिम बना दिया था। उसके पहले क्रान्तिकारियों के और क्रान्तिकारियों में भी मुखबिर होते थे। उनमें कुछ आजादी के बाद तक लांछन झेलते रहे। उसके भी पहले 1857 के विद्रोह की पराजय में एक बड़ा कारण मुखबरी था।

आज की बात करते हैं। वाजपेयी जो अपने को प्रधानमंत्री से पहले स्वयंसेवक कहते थे, के प्रधानमंत्री रहते कंपनियों को संसाधनों की बिकवाली और देश के भीतर व सीमा पर हमलों में कोई कमी नहीं रही। पिछले आम चुनाव में भाजपा की सरकार बन जाती तो वह एकता यात्रा की कवायद नहीं करती। तब उसे राष्ट्रीय एकता बनी हुई और मजबूत नजर आती। जैसे

सत्तासीन कांग्रेस को आती है। शासक-वर्ग की यही खूबी होती है। कांग्रेस ने पिछले आम चुनाव में भाजपा को एक बार फिर परास्त कर दिया तो कारण साफ था। वह कारपोरेट हितों को पोसने वाली नवउदारवादी व्यवस्था को मजबूती से आगे बढ़ाने में भाजपा से ज्यादा दक्ष सिद्ध हुई है। उसका कारण भी स्पष्ट है। आज की कांग्रेस के पास स्वर्गीय राजीव गांधी को छोड़ कर विरासत के नाम पर ढोने के लिए कोई बोझ नहीं है। आज की कांग्रेस के मायने श्रीमती सोनिया गांधी हैं। श्रीमती सोनिया गांधी की चेतना में न आजादी के संघर्ष और उसके मूल्यों की कोई रेखा हो सकती है, न आजादी के बाद के नेहरूवादी समाजवाद की। अमेरिका की दाब में न आने के इंदिरा गांधी के तेवर का स्पार्क भी उनमें नहीं है।

भारत जिस भले-बुरे महासमुद्र का नाम है, उसे थाहने का काम बड़े-बड़े प्राच्यवादी और भारतीय विद्वान नहीं कर पाते हैं। जाहिर है, श्रीमती सोनिया गांधी के वश का वह काम नहीं है। ये श्रीमती गांधी की कमियां नहीं कही जा सकतीं। इस सब के लिए उनकी अक्षमता स्वयंसिद्ध है। उन्होंने अक्षमता को ओवरकम करने का गंभीर प्रयास भी नहीं दर्शाया है। वे राजीव गांधी की पत्नी के नाते कांग्रेस की 'रानी' हैं और उनका बेटा देश का 'युवराज'। उन्होंने अलबत्ता यह अच्छी तरह समझ लिया है कि भारत का शासक-वर्ग किन्हीं भी कारणों से सत्ता के शीर्ष पर पहुंचे व्यक्ति की अंधा होकर चापलूसी करता है।

मनमोहन सिंह को आप जानते हैं। वे उपनिवेशवादी दौर में पड़े पूंजीवादी साम्राज्यवाद के बीज का प्रस्फुटन हैं। उनके लिए नव-साम्राज्यवाद की सेवा एकमात्र और स्वाभाविक कर्म है। इसीलिए आज की कांग्रेस भाजपा से ज्यादा चुस्ती-फुर्ती से काम करती है। आजादी के संघर्ष का बिरसा तो भाजपा के पास भी नहीं है, लेकिन प्राचीन हिंदू-राष्ट्र और हिंदू संस्कृति की 'महानता' का बोझ उसे दबोचे रहता है। हालांकि, उसके कुछ 'आधुनिक सपने' भी हैं। उनमें एक सपना रहा है कि समाजवादी रूस से काट कर पूंजीवादी अमेरिका के साथ भारत को अपने संबंध मजबूत करने चाहिए। इसमें उसे दोहरा लाभ लगता है। पहला, भारत से समता के विचार का बीज-नाश होगा और उससे 'हिंदू-राष्ट्र' कायम होने में भारी मदद मिलेगी। दूसरा, भारत से जुड़ कर अमेरिका 'मुस्लिम राष्ट्र' पाकिस्तान से कटेगा, उससे भी 'हिंदू-राष्ट्र' का कारज सिद्ध होगा।

उसने पहली बार केंद्र में सत्ता मिलते ही अमेरिका के साथ वार्ताओं के कई दौर चलाए। जसवंत सिंह-टालबोट वार्ताएं लोग भूले नहीं होंगे। पूरे शासनकाल में भाजपा अमेरिकी चापलूसी में संलग्न रही, ताकि कांग्रेस से बाजी मारी जा सके। लेकिन भूतकालिक दिमाग हमेशा फिसड्डी ही रहता है। भाजपा भूल गई कि रूस बिखर चुका है, और राजीव गांधी, नरसिम्हाराव-मनमोहन सिंह की जोड़ी के आने के पहले कांग्रेस को भारत में अमेरिका की सेवक पार्टी की भूमिका में डाल चुके थे। जाहिर बात है कि कारपोरेट पूंजीवाद के शिखर अमेरिका को कांग्रेस भाजपा से ज्यादा सूट करती है। अगर अगले चुनाव में सोनिया गांधी का दांव ठीक पड़ जाएगा, तो भारत की सरकार और शासक-वर्ग सीधे अमेरिका का एक्सटेंशन बन जाएंगे। फिर एंडरसनों और

क्वात्रोकियों को भारत छोड़ कर अमेरिका या यूरोप नहीं भागना पड़ेगा। वे कितना भी खून-खराबा, घूसखोरी-खुफियागीरी करके यहीं रहेंगे, क्योंकि भारत सरकार और शासक-वर्ग के अंदरूनी तंत्र तक उनका आदेश (डिक्टेट) काम करेगा। जो अमेरिकी 'गुणवत्ता' भारत के शासक-वर्ग की नसों समा गई है, वह उसके शासकीय तंत्र में समाएगी ही।

किसी विपक्षी पार्टी के लिए स्वाभाविक लोकतांत्रिक भूमिका होगी कि वह राष्ट्रीय संप्रभुता और वंचित समूहों पर आए गंभीर संकट को दूर करने के लिए सत्तारूढ़ पार्टी से संघर्ष करे। भाजपा देश की सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी है। लेकिन वह देश की नवउदारवादी लूट में ही अक्ल आने की ताकत बनाने के लिए तिरंगे पर कब्जे की लड़ाई लड़ती है। नव-साम्राज्यवादी ताकतों के देश-दखल से उसे न राष्ट्रीय एकता पर खतरा लगता है, न उसकी राष्ट्र-भक्ति जोर मारती है। भाजपा का अभी तक का इतिहास यह बताता है कि वह भी आजादी के संघर्ष की बदौलत गुलामी से निकले भारत को समझने में अक्षम है।

हालांकि किसी के भी लिए नई शुरुआत की संभावना हमेशा खुली होती है। लेकिन भाजपा ने हमेशा की तरह इस बार भी निराश किया है। पूरी एकता यात्रा के दौरान और उसे रोके जाने पर किसी भाजपा नेता का बयान इस आशय का नहीं आया कि तिरंगे की ताकत को देश की जनता के साथ जोड़ कर नव-साम्राज्यवादी प्रतिष्ठान के खिलाफ लड़ा जाएगा। जाहिर है, भारत के शासक-वर्ग की दो बड़ी जमातों ने तिरंगे को देश की जनता से काट कर राजनैतिक वर्चस्व की लड़ाई में अवमूल्यित कर दिया है।

अवमूल्यन और गहरा जाता है, क्योंकि तिरंगे पर कब्जे की लड़ाई सरकार में आकर नव-साम्राज्यवाद को फेसिलीटेट करने के लिए है। भाजपा के नवउदारवादी नीतियों को आगे बढ़ाने से नाराज होकर गोविंदाचार्य अलग से राष्ट्रीय स्वाभिमान का आंदोलन चला रहे हैं। कुछ लोग उनके साथ जुटते भी हैं। लेकिन गोविंदाचार्य के साथ भी वही दिक्कत है, जो संघ-भाजपा के साथ है। उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान का विचार जल्दी ही खिसक कर 'हिंदू स्वाभिमान' के चिर-परिचित धरातल पर आ जाता है। संघ-भाजपा को पुराने का मोह छोड़ कर आज के भारतीय समाज और राष्ट्र को अपना पहला सरोकार बनाना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया।

अतीत-जीविता के अवशेष हर समाज में होते हैं। भारत जैसे अत्यंत प्राचीन समाज में उनका काफी ज्यादा होना स्वाभाविक है। अगर कोई राजनीतिक जमात उस नस को पकड़ती है, तो उसे हमेशा एक निश्चित समर्थन मिलता रहेगा। भाजपा को वह मिलता है और उसकी राजनीति चलती है। दरअसल, यह बैठे ठाले की उपलब्धि है, जिस पर गर्व करने का कोई अर्थ नहीं है। मनुष्यार्थ हमेशा नवीन उपलब्धियां करने में होता है। कहने की जरूरत नहीं कि भाजपाई और कांग्रेसी दिमाग काफी-कुछ मिला-जुला होता है। वरना बिना अपनी सरकार के आरएसएस इतना नहीं बढ़ता। यह भी कहने की जरूरत नहीं है कि आरएसएस में किसान-मजदूर नहीं होते।

उसकी रीढ़ व्यापारी और सेवा क्षेत्र के कर्मचारी-अधिकारी होते हैं, जिन्होंने कांग्रेसी शासन में अपना सफल निर्वाह किया होता है।

इस बार 26 जनवरी को हम गाजियाबाद की कॉलोनी सूर्यनगर में थे। वहां एक बड़े पार्क में रेजीडेंट वेलफेयर एसोसिएशन का गणतंत्र दिवस पर आयोजित कार्यक्रम चल रहा था। कार्यक्रम स्थल के लिए बने गेट पर 'गर्व से तिरंगा लहराएं, भारतीयता जताएं' लिखत के पोस्टर लगे थे। वहां जो भाषण हो रहे थे, उनमें भाजपा के लाल चौक पर तिरंगा फहराने के फैसले पर भी गर्व झलक रहा था। पोस्टर और भाषणों में कांग्रेस और भाजपा दोनों की संतुष्टि के भाव आपस में आवा-जाही कर रहे थे। एक बच्चे की कविता ने हमें थोड़ा चौंकाया। उसने रस्मी कविताओं के बीच आजादी के अधूरेपन की बात की, जो अनेक लाशों पर पांव रखते हुए आई। लेकिन हम जल्दी ही निराश भी हुए। उस बच्चे ने आजादी को पूरा करने के लिए लाहौर, कराची और ढाका को जल्दी से जल्दी भारत में मिलाने आह्वान किया।

बाकी का शासक-वर्ग

अब थोड़ी चर्चा कांग्रेस-भाजपा के वृहद दायरे से बाहर के शासक-वर्ग की करें। इसका उल्लेख होता नहीं है, लेकिन सच्चाई है कि भाजपा अकेली जमात नहीं है जिसने तिरंगे को ताकत के तर्क पर मजबूरी में स्वीकार किया हुआ है। भारत का पूरा आधिकारिक मार्क्सवादी खेमा तिरंगे को मजबूरी में सलाम करता है। वह जानता है अगर शासक-वर्ग का एक कोना पकड़े रहना है, तो राज-काज में तिरंगे को साक्षी रखना होगा। रूस और चीन के जो भी झंडे हों, वे पार्टी के काम के हो सकते हैं, भारत में शासक-वर्ग की ताकत का प्रतीक झंडा तिरंगा है। अति-वामपंथी समूह संविधान को नहीं मानते, तो तिरंगे को भी नहीं मानते। तिरंगे की ताकत पर एकजुट भारतीय राज्य पर उनका हमला है। हमला जब सफल हो जाएगा, वे अपना झंडा लहराएंगे, जो बहुत मुमकिन है इकरंगा होगा। उनके अलावा अन्य पार्टियां नहीं होंगी, तो उनके झंडे भी नहीं होंगे।

इस चर्चा को थोड़ा और बढ़ाते हैं। किसी प्राचीन हिंदू संस्कृति और उसके भूगोल 'हिंदुस्थान' पर रीझे संघियों को अगर 15 अगस्त 1947 को अस्तित्व में आए भारत के विचार से प्रेम नहीं है, तो मार्क्सवादियों को भी वह कभी नहीं रहा है। लिहाजा, भारत के उस विचार के साथ जो झंडा निकल कर आया, उससे भी दोनों को स्वाभाविक प्रेम नहीं हो सकता। कारण छिपा नहीं है। एक के सपनों का भारत दूर समय में बसता है, दूसरे का दूर स्थानों में। दोनों की शिकायत है कि आजाद भारत उनके विचार के मुताबिक अस्तित्व में क्यों नहीं आया? या अब क्यों नहीं आता है? अति-वामपंथी साथी कश्मीर की आजादी का सपना इस रूप में देखते हैं कि उसके बाद भारतीय राज्य का विघटन शुरू हो जाएगा, और उसे उनके विचार से अलग अस्तित्व में

आने की सजा मिल जाएगी। यानी उन्हें केवल मौजूदा भारतीय राज्य से नहीं, भारत के उस विचार से ही खंडक है, जो आजादी के साथ अस्तित्व में आया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह भी एक तरह से बैठे ठाले का चिंतन है। आजादी के संघर्ष में विचारों और कार्यों की कई धाराएं सक्रिय थीं, जो आपस में टकराती भी थीं, और एक-दूसरी को मान्य करके भी चलती थीं। उन विचारों और कार्यों की प्रेरणा भारतीय-भर नहीं थी। पूरे विश्व का संदर्भ उनमें सक्रिय था। हालांकि विश्व का मतलब तब भी ज्यादातर आज की तरह यूरोप और अमेरिका होता था। लेकिन वे सब प्रेरणाएं भले-बुरे तत्कालीन भारतीय यथार्थ की कसौटी पर कसी जाकर फलीभूत हो सकती थीं।

अढ़ाई सौ साल के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष से गुजरने के बाद भारत का जो भला-बुरा विचार अस्तित्व में आया, वह समस्त प्रेरणाओं की सामर्थ्य और संभावनाओं का समुच्चय था। इस वास्तविकता को हमें समझना और स्वीकारना होगा। एक ऐतिहासिक चरण पर समुच्चय का वह काम गांधी ने किया। उस दौर में वे नहीं होते तो कोई और करता। यह भी हो सकता है गांधी से ज्यादा बेहतर तरीके से करता। हालांकि बुरा भी हो सकता था। गांधी ने भरसक कोशिश की कि आजादी पाने का कोई मंच या प्रतीक शासक-वर्ग की ताकत का मंच या प्रतीक न बने। दूसरी बात उन्होंने यह की कि भारत गुलामी की फितरत छोड़ दे। स्वतंत्रता के साथ भारत और विश्व का ऐसा विचार गढ़े जिसमें 'स्वराज्य' में कोई बाधा न पड़े। तीसरी बात उन्होंने की कि जो हो, अहिंसक तरीके से हो। स्वराज्य की अवधारणा और उसे हासिल करने की अहिंसक कार्यप्रणाली, जिसे लोहिया ने दुनिया की अब तक की सबसे बड़ी क्रांति कहा था, मार्क्सवादियों और संघियों के लिए नितांत त्याज्य और निंदनीय हैं। क्योंकि वे मानते हैं, जो श्रेष्ठतम है, वह हो चुका है - एक के लिए काल में, दूसरे के लिए स्थान में। जिम्मेदारी केवल उसे लागू करने की है।

गांधी के लिए परिपूर्णता (परफेक्शन) प्रक्रिया का परिणाम था, न कि दिमाग में बना-बनाया फार्मूला। उस दौर की प्रक्रिया जितनी विराट और जटिल थी, वैसी शायद ही किसी समाज में कभी रही हो। गांधी के नेतृत्व में चले स्वाधीनता आंदोलन में कमजोरियां और असफलताएं होना लाजिमी था, क्योंकि वे बड़ा काम कर रहे थे। बने-बनाए फार्मूलों से 'क्रांति' और उसके लिए जनता को हथियारबंद करने का दावा करने वालों को थोड़ा रुक कर सोचने की जरूरत है कि उनके विचार का भारत क्यों नहीं अस्तित्व में आया, या आता है? तब शायद वे यह भी सोच पाएं कि कहीं उन्हें भारत-माता से ही विरोध तो नहीं रहा है?

जैसा कि ऊपर हमने बताया है, आजादी के संघर्ष के जमाने में तिरंगा कांग्रेस का झंडा हुआ करता था, जिसके बीच में चरखे का निशान होता था। गांधी चरखे के निशान को श्रम और साधारण भारतीय जन से जोड़ कर देखते थे। तिरंगा उनके लिए जनता के विश्वास और शक्ति

का प्रतीक था। संविधान सभा ने 1947 में चरखा हटा कर तिरंगे के बीच में धर्म-चक्र रखा तो उन्हें परेशानी हुई। लेकिन जब समझाया गया कि चरखा रखने से दोनों तरफ छपाई नहीं हो सकती, और धर्म-चक्र चरखे के चक्र का अर्थ भी धारण करता है तो उन्होंने स्वीकार कर लिया। तिरंगे के प्रति उन्होंने कभी अतिरिक्त मोह या आवेग नहीं दिखाया। उस दौर में भी नहीं जब हिंदू महासभा और मुस्लिम लीग तिरंगे के बरक्स अपने भगवा और हरे रंग के झंडों को ज्यादा महत्व देते थे, और तिरंगे को फाड़ भी देते थे। आजादी के समय 1946-1947 में भड़के हिंदू-मुस्लिम दंगों के समय उन्होंने मुस्लिम लीग के झंडे को तिरंगे के साथ लगाना स्वीकार कर लिया।

गांधी की अनैतिहासिक और अतार्किक ढंग से निंदा करना उतना ही गलत है, जितना उनका चयनात्मक अपनाव (अप्रोप्रिएशन) करना। हमें लगता है कि सभी प्रेरणाओं की भूमिका और भागीदारी तत्कालीन वास्तविकता की कसौटी पर चरितार्थ होती तो भारत की जनता की लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी राजनैतिक समझ और चेतना ज्यादा परिपक्व होती।

फरवरी 2011

पुनश्च : उपर्युक्त विशेष लेख के बाद एक दशक बीतने पर कुछ बातें साफ तौर पर देखी जा सकती हैं :

*मोदी-शाह-भागवत के नेतृत्व में आरएसएस/भाजपा ने महज 7-8 सालों में सत्ता के दुरुपयोग के मामले में कांग्रेस को मीलों पीछे छोड़ दिया है।

*कांग्रेस ने आपातकाल लागू करके निश्चित ही लोकतंत्र की चादर पर दाग लगाया था। मौजूदा सरकार ने लोकतंत्र को ही आपातकाल में तब्दील कर दिया है।

*निजीकरण-उदारीकरण यानि राष्ट्रीय परिसंपत्तियों का वि-राष्ट्रीकरण (डी-नेशनलाइजेशन) करने की वाजपेयी-कालीन सुस्ती से आरएसएस/भाजपा ने पूरी तरह निजात पा ली है। इस तरह उसने कारपोरेट घरानों की पसंदीदा पार्टी के रूप में भी कांग्रेस को बुरी तरह पछाड़ दिया है।

*आरएसएस/भाजपा ने कांग्रेस की ताकत को काटने के लिए तिरंगे को अपनाया था। उसी तिरंगे को उसने सामान्य देशवासियों का नव-साम्राज्यवादी गुलामी की ओर से, और मेहनतकश जनता का गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, कुपोषण . . . की ओर से ध्यान हटाने का जरिया बना दिया है।

*कारपोरेट राजनीति के तहत कारपोरेट भारत के निर्माण में राष्ट्रीय प्रतीक-पुरुषों का इस्तेमाल होगा, तो राष्ट्रीय ध्वज का इस्तेमाल भी होगा।

*आजादी का अमृत महोत्सव के अवसर पर 13 से 17 अगस्त तक चलने वाले सरकार के 'हर घर तिरंगा' कार्यक्रम को इस दृष्टिकोण से भी देखने की जरूरत है।

*तिरंगे पर आरएसएस/भाजपा का इस कदर कब्जा होने पर कांग्रेस का विचलित होना स्वाभाविक है। कांग्रेस ने आरएसएस/भाजपा पर छद्म राष्ट्रवादी होने का आरोप लगाते हुए 'हर घर तिरंगा' कार्यक्रम को पाखंड बताया है। उसने देश के लोगों को याद दिलाया है कि आरएसएस ने स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध किया था, और देश आजाद होने के 52 सालों तक अपने नागपुर स्थित कार्यालय पर तिरंगा नहीं फहराया था। उसने झण्डा संहिता में किए गए बदलावों का विरोध करते हुए मशीन और पॉलिएस्टर से तिरंगा बनाने और उसका आयात करने के सरकार के फैसले का भी विरोध किया है। कांग्रेस ने तंज कसते हुए सरकार के 'हर घर तिरंगा' कार्यक्रम को 'हर घर चीन का बना तिरंगा' कार्यक्रम नाम दिया है।

*तिरंगे पर कब्जे की शासक-वर्ग की इस भीषण लड़ाई में कांग्रेस को खुद भी यह याद आया है कि तिरंगा आजादी के संघर्ष में हुई असंख्य कुर्बानियों, और राष्ट्र की स्वतंत्रता और संप्रभुता का प्रतीक है। आशा की जानी चाहिए कि तिरंगे को लेकर कांग्रेस की समझ आगे भी ऐसी ही बनी रहेगी।

*स्वतंत्रता दिवस का अवसर देश की स्वतंत्रता के साथ यह भी याद रखने का दिन है कि नागरिक (और मनुष्य) के तौर पर प्रत्येक भारतीय अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। राष्ट्रीय संस्थाओं के ध्वंस और राष्ट्रीय परिसंपत्तियों/संसाधनों को देशी-विदेशी कंपनियों को बेचने में लगा शासक-वर्ग तिरंगा फहरा कर अथवा 'देशभक्ति पाठ्यक्रम' चला कर उसकी राष्ट्रीय भावना को भ्रमित नहीं कर सकता।

(समाजवाद आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं)